

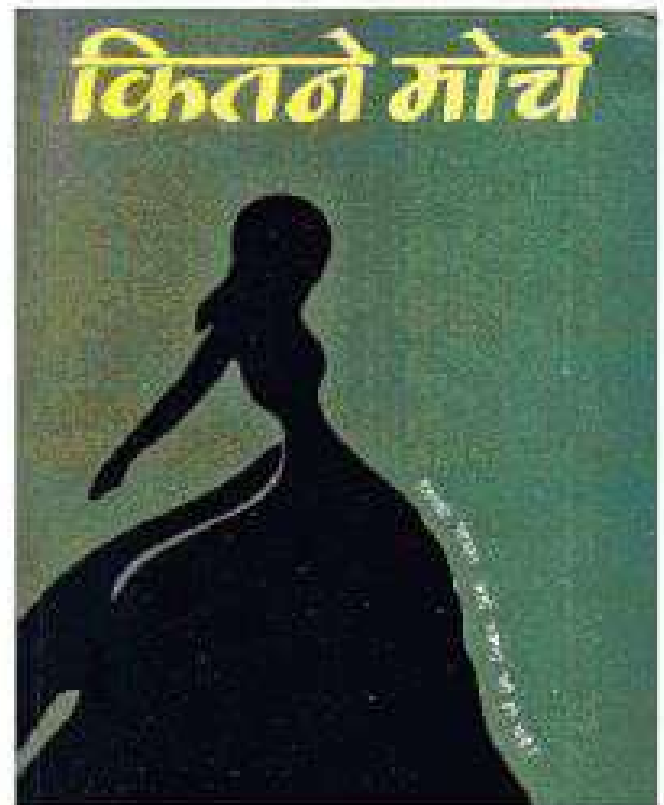
फौजी परिवारों की वीरांगनाएं

अरुण सिंह

हमारे फौजियों की बहादुरी पर समूचे देश को गर्व है। फौजी कभी सरहदों की निगहबानी करते हैं तो कभी आतंकियों से मोर्चा लेते हैं। अपना फर्ज निभाने के दौरान वे लंबे-लंबे समय तक अपने परिवार से दूर रहते हैं। इस बीच, उनके परिवार जिन संघर्ष और परेशानियों से जूझते हैं, उन्हें अपने उपन्यास 'कितने मोर्चे' के जरिये पाठकों के सामने लाई है वन्दना यादव।

देशवासी अपने सैनिकों पर गर्व करते हैं। अपने शहीदों को नमन करते हैं। लेकिन वे इस सच्चाई से अनजान रहते हैं कि फौजियों की गैर-मौजूदगी में उनकी जिम्मेदारियां कौन निभा रहा है। सिंगल पैरेंट की तरह अपने बच्चों को संभालने और घर की छोटी-छोटी जरूरतों के लिए किस तरह पीछे छूट गई फौजियों की पत्नियां संघर्ष करती हैं, उनकी कहानी है यह उपन्यास। फौजियों की पत्नियों को कभी समूचे परिवार के साथ रहने को मिलता है, तो कभी पति के बिना बिल्कुल अकेले। कुसुम, रीना, श्रीला, रजिया, जूही जैसे पात्रों के जरिये उन महिलाओं के जीवन को परत-दर-परत पाठकों के सामने रखा है, जो पदों के पीछे रहकर अपना दायित्व निभा रही हैं। यह ऐसे नींव के पत्थरों से रू-ब-रू होने का सिलसिला है, जो पहचान बना पाने या न बना पाने के विवाद से बहुत ऊपर हैं।

वन्दना खुद एक कर्नल की पत्नी हैं। वह खुद भी इस संघर्ष से दो-चार हुई हैं। सैनिक परिवारों की चौधरी विहार कॉलोनी के जरिये वह उनके शौर्य को सामने रखती हैं, जो अक्सर सामने नहीं आता। ये वीरांगनाएं शांतिकाल में भी जीवन के युद्ध की विभीषिका अकेले झेलने को बाध्य



पुस्तक : कितने मोर्चे

लेखिका : वन्दना यादव

प्रकाशक : अनन्य प्रकाशन, दिल्ली

मूल्य : 350 रुपये

हैं। वे अपने आपको भूलाकर पति और परिवार को सबसे ऊपर रखती हैं। उनकी बहादुरी और कुर्बानियों का कहीं जिक्र तक नहीं होता। 'कितने मोर्चे' इन्हीं वीरांगनाओं को समर्पित है।

सैनिकों के परिवारों का जीवन इस उपन्यास का केंद्र बिंदु है। इस उपन्यास का कथानक उम्दा और बेहद दमदार है, लेकिन कहीं-कहीं रह गई भाषायी त्रुटियां खटकती हैं। विभिन्न फौजी परिवारों के तमाम छोटे-बड़े संघर्षों को सामने रखते हुए उपन्यास यह संदेश भी देता है कि सुख-दुख मानसिकता पर निर्भर करते हैं और मानसिकता बदलते ही सुख-दुख के मायने भी बदल जाते हैं।